THE TIMES OF INDIA

Date: 10-02-25

Lesson No. 1

Delhi verdict tells all parties urban voters want liveable cities. But local bodies are funded poorly & run worse

TOI Editorial

Last year, Supreme Court hauled up Delhi's govt and its municipal corporation at least four times over piling garbage. On Feb 5,voters booted out the govt. Pundits say the middle class swing that kneecapped AAP in Delhi may have started with civic problems like garbage and broken roads. So, parties that have promised Singapores and Shanghais - and roads as smooth as an actress' cheeks in Patna - for years should stop mistaking voters' patience for amnesia, and start fixing city governance.

Municipal bodies are called the third tier of govt for a reason. Roads, water, sewers, schools, clinics are their mandate. But in state after state, their powers have been curbed even though cities house more than a third of India's people and generate about two-thirds of GDP. Forget smaller cities, elections to BMC-Mumbai's corporation are three years overdue. A mammoth budget of almost 75,000cr is left to the discretion of unelected administrators. That's no way to run a great city. NYC, London and Paris take civic bodies seriously. Their mayors have real executive powers. Remember Rudy Giuliani in his NYC mayor avatar after 9/11? Boris Johnson chose to be London mayor for eight years after two terms as an MP.

Empowering India's municipal corporations would mean deepening their pockets. Currently, according to an RBI report, their revenue receipts amount to just 0.6% of GDP. Property tax, the biggest municipal revenue stream, accounts for a fifth of this. Loss of levies like entertainment tax and octroi after GST has left civic bodies at the mercy of state govts and Centre. In Delhi's case, AAP govt claimed Centre didn't allocate any funds to MCD even though it set aside 82,207cr for local bodies in last year's budget. As cities grow, so will their municipal financing needs, and bonds are an option worth considering now. US cities use them to raise funds regularly, and the country's municipal bond market is worth $4tn. It helps that scores of US municipalities have AAA rating. To tap mar- kets, Indian cities would need to be more transparent about their accounts.Double-engined Delhi and Mumbai should start now.

THE ECONOMIC TIMES

Date: 10-02-25

The Gig is Growing, Rights Mustn't Lag

Have a social security net to boost the sector

ET Editorial

According to TeamLease, employment in India's gig economy is set to double in the next five years. This form of work differs from traditional employment due to factors that make it difficult to ensure labour rights. Regulating the platform worker market requires a nuanced approach, one that avoids introducing rigidities, while remaining inclusive. Rules must be tailored to address mobility, working conditions, social security and bargaining power. Gig work must be classified as employment, followed by conditions that define it. India has taken the first step by incorporating platform work into a separate labour code, and introduced measures to expand publicly funded social security for gig workers. This year's budget announced that GoI will provide healthcare benefits for gig workers under PM Jan Arogya Yojana. Private companies must follow for their own benefit.

This approach avoids the pitfalls of classifying gig work strictly as employment, which could hinder the growth of ecommerce, or as self-employment, which would limit access to formalised social security. Future interventions must account for the fluid nature of the gig economy. These include access to credit that considers income fluctuations, portability of social security due to the temporary nature of engagements, skilling for upward mobility ensuring algorithms do not alter contract conditions without human oversight, and maintaining pay parity with wages in formal employment.

Access to insurance is critical. Gig work often involves navigating busy and inconsistently regulated transportation infra. This challenge becomes even more pressing as the sector expands beyond large urban centres. Policy must also address the likely imbalance in bargaining power resulting from use of AI. Another critical factor is skilling. Without opportunities for growth, supply of labour for dead-end jobs may dwindle. Tech dispersion creates more pathways for individual advancement. The platform economy competes with traditional distribution channels and must cultivate its own talent pool.

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 10-02-25

दरों में कटौती के बाद

संपादकीय

भारतीय रिजर्व बैंक की छह सदस्यों वाली मौद्रिक नीति समिति (एमपीसी) ने वित्त वर्ष की अपनी आखिरी बैठक और नए गवर्नर संजय मल्होत्रा की अगुआई में हुई पहली बैठक में सर्वसम्मति से नीतिगत रीपो दर 25 आधार अंक घटाने का फैसला लिया। बाजार भागीदार पहले ही इस कटौती का अनुमान लगा रहे थे। पिछले शुक्रवार के इस निर्णय के पीछे एक कारण कम मुद्रास्फीति का अनुमान भी रहा। रिजर्व बैंक को उम्मीद है कि मॉनसून सामान्य रहेगा और उपभोक्ता मूल्य सूचकांक पर आधारित मुद्रास्फीति की दर 2025-26 में औसतन 4.2 फीसदी रहेगी। चालू वित्त वर्ष के लिए इसका अनुमान 4.8 फीसदी जताया गया था। चूंकि मौद्रिक नीति को भविष्य के हिसाब से बदलना चाहिए और मुद्रास्फीति का अनुमान तय लक्ष्य के भीतर रहने तथा वृद्धि सुस्त होने पर मौद्रिक नीति में ढिलाई बरतन ठीक ही लगता है।

मगर इस समाचार पत्र में पिछले हफ्ते दिया गया तर्क दोहराते हुए वैश्विक अनिश्चितता को देखते हुए कटौती के लिए अभी रुकना चाहिए था। खास तौर पर अमेरिका की घटनाएं मुद्रास्फीति पर असर डाल सकती है जिसे देखते हुए समिति को ठहरना ही चाहिए था। उसके अलावा भी विभिन्न देशों पर शुल्क लगाने या उसकी धमकी देने के अमेरिकी कदम ने डॉलर को मजबूत कर दिया है, जिससे उभरते बाजारों की मुद्राएं खास तौर पर लुढ़क गई हैं। रुपये की कीमत ही 2025 में 2 फीसदी से अधिक गिर चुकी है और गिरावट आगे भी जारी रहने का खटका है। इससे आयातित वस्तुएं महंगी होगी। अक्टूबर में आई रिजर्व बैंक की छमाही मौद्रिक नीति रिपोर्ट में कहा गया है कि रुपया अगर बेसलाइन से 5 फीसदी गिरा तो मुद्रास्फीति में 35 आधार अंकों का इजाफा हो सकता है। चालू वित्त वर्ष की दूसरी छमाही में बेसलाइन विनिमय दर 83.5 रुपये प्रति डॉलर रही। फिलहाल रुपये की कीमत 87.43 प्रति डॉलर है।

रिजर्व बैंक का कहना है कि मुद्रास्फीति का अनुमान लगाते समय रुपये के अवमूल्यन का ध्यान रखा जाता है, लेकिन वैश्विक घटनाओं से रुपये पर लगातार दबाव रहा तो मुद्रास्फीति चढ़ सकती है। इसके अलावा व्यापार में अनिश्चितता से आपूर्ति श्रृंखला में रुकावट आ सकती है, जिसका असर भी मुद्रास्फीति पर पड़ेगा। बहरहाल अब रिजर्व बैंक कटौती कर ही चुका है तो बहस इस बात पर होनी चाहिए कि मुद्रास्फीति का अनुमान यही रहने पर नीतिगत दर में और कितनी कमी की जा सकती है। रिजर्व बैंक के अर्थशास्त्रियों के हाल के शोध में कहा गया कि 2023-24 की चौथी 1.4 से 1.9 फीसदी की तटस्थ दर का अनुमान था। इस दायरे के मध्य बिंदु के हिसाब से समिति नीतिगत दरों में 50 आधार अंकों की कटौती और कर सकती है। किंतु कटौती कब होगी यह कई कारकों और वैश्विक घटनाक्रम पर निर्भर होगा।

मौद्रिक नीति समिति के निर्णय के अलावा भी रिजर्व बैंक की कई घोषणाओं का जिक्र यहां होना चाहिए। जैसे मल्होत्रा ने अपने वक्तव्य में कहा कि रिजर्व प्रमुख वृहद आर्थिक वेरिएबल्स के पूर्वानुमान को बेहतर बनाने का काम करेगा। यह स्वागत योग्य बात है क्योंकि मौद्रिक नीति अनुमानों की सटीकता पर ही निर्भर करती है। रिजर्व बैंक को इस साल सकल घरेलू उत्पाद वृद्धि का अपना अनुमान काफी पटाना पड़ा। गवर्नर ने बैंकों से भी कहा कि अपने पास आया धन रिजर्व बैंक के पास रखने के बजाय मुद्रा बाजार में आपसी कारोबार करें ताकि मुद्रा बाजार मजबूत हो जाए। बैंकों की अनिच्छा के कारण अक्सर प्रणाली में तरलता की स्थिति बिगड़ जाती है और रिजर्व बैंक को दखल देना पड़ता है। मल्होत्रा ने यह भी कहा कि रिजर्व बैंक नियमन की लागत और लाभ में संतुलन साधने की कोशिश करेगा। ऋणदाताओं को राहत देते हुए प्रस्तावित तरलता कवरेज अनुचत दिशानिर्देश टाल दिए गए है।

Date: 10-02-25

परमाणु ऊर्जा अपनाने के साथ बचाव भी जरूरी

प्रसेनजित दत्ता, (लेखक बिज़नेस वर्ल्ड और बिजनेस टुडे के संपादक रह चुके हैं और संपादकीय परामर्श फर्म प्रोजैक व्यू के संस्थापक हैं)

एक के बाद एक बजट में परमाणु ऊर्जा का लगातार उल्लेख इस बात का प्रमाण है कि सरकार इसके लिए काफी उत्साहित है। वित्त वर्ष 2024-25 के पूर्ण बजट में छोटे मॉड्यूलर रिएक्टर यानी एसएमआर (300 मेगावॉट से कम क्षमता) पर जोर देते हुए कहा गया था कि इनके शोध एवं विकास में निजी क्षेत्र की भागीदारी होनी चाहिए। इस बार के बजट प्रस्तावों में उसी को आगे बढ़ाते हुए 2047 तक 100 गीगावॉट परमाणु ऊर्जा उत्पन्न करने की बात कही गई है और यह भी कहा गया है कि 2033 तक कम से कम पांच छोटे मॉड्यूलर रिएक्टर तैयार होकर काम कर रहे होंगे। यह साहसिक कदम है क्योंकि दुनिया भर में ऐसे छोटे रिएक्टर बनाए तो जा रहे हैं मगर अभी यह नहीं पता कि वे लंबे समय तक आर्थिक रूप से कारगर होंगे भी या नहीं।

दुनिया निजी क्षेत्र के छोटे माड्यूलर रिएक्टरों की ओर बढ़ रही है और नीति आयोग तथा परमाणु ऊर्जा विभाग की 2023 की रिपोर्ट में भी इसकी सिफारिश की गई थी। अमेरिका में आर्टिफिशल इंटेलिजेंस के कारण ऊर्जा की बढ़ती मांग पूरी करने के लिए इन छोटे रिएक्टरों को रामबाण माना जा रहा है। यूं भी छोटे माड्यूलर रिएक्टरों को कार्बन मुक्त ऊर्जा वाले भविष्य के लिए जरूरी माना जा रहा है। रूस, अमेरिका, कनाडा, अर्जेंटीना, चीन, दक्षिण कोरिया और अन्य देशों में उन्हें या तो लगाया जा रहा है या उनकी योजना बन रही है। अंतरराष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेंसी (आईएईए) का कहना है कि दुनिया भर में इस समय छोटे वाणिज्यिक माड्यूलर रिएक्टरों की 80 से ज्यादा डिजाइन तैयार हो रही हैं और इन सभी के उत्पादन तथा इस्तेमाल अलग-अलग होंगे। सिलिकन वैली के एआई तकनीकी दिग्गज खास तौर पर परमाणु ऊर्जा और छोटे रिएक्टरों के हिमायती हैं और इन्हें बिजली की बढ़ती मांग का हल मानते हैं।

भारत में अभी करीब 8.18 गीगावॉट परमाणु ऊर्जा तैयार होती है, जो अधिक नहीं है। इसकी एक वजह अमेरिका तथा अन्य विकसित देशों द्वारा लगाए गए प्रतिबंध भी हैं। ये देश विकासशील देशों को परमाणु ऊर्जा के शांतिपूर्ण इस्तेमाल के लिए भी तकनीक तथा कच्चा माल नहीं देते। मगर एआई तथा क्रिप्टोकरेंसी के कारण ऊर्जा की

मांग में जबरदस्त इजाफे के कारण यह रुख बदला है। रुख बदलने की एक वजह छोटे माड्यूलर रिएक्टर बनाने वाले उद्यमी भी हैं, जो नए बाजार तलाश रहे हैं। इसलिए भारत को 2033 तक पांच छोटे रिएक्टर तैयार कर चलाने में दिक्कत नहीं होगी चाहे वे स्वदेशी न होकर लाइसेंस वाली तकनीक पर ही क्यों न चल रहे हों।

निजी क्षेत्र को शामिल करने के लिए सरकार परमाणु ऊर्जा अधिनियम और परमाणु क्षति के लिए नागरिक दायित्व अधिनियम में संशोधन की योजना बना रही है ताकि हर किसी के लिए नियामकीय झंझटों में फंसे बगैर छोटे माड्यूलर रिएक्टरों की तकनीक खरीदना और उन्हें चलाना आसान हो जाए। मगर यहीं पर चिंता शुरू होती हैं।

छोटे माड्यूलर रिएक्टर का उत्पादन अब पुराने और बड़े परमाणु ऊर्जा संयंत्रों के मुकाबले ज्यादा सुरक्षित और किफायती है क्योंकि पुराने रिएक्टरों में दुर्घटनाएं हो जाती थीं । थ्री माइल आइलैंड, चेर्नोबिल और फुकुशिमा जैसी दुर्घटनाओं के कारण ही परमाणु ऊर्जा से मुंह मोड़ा जाने लगा था। दुर्घटनाओं के अलावा परमाणु संयंत्र बनाने और संभालने का ऊंचा खर्च तथा परमाणु कचरा निपटाने की चुनौती जैसे कारणों से भी दुनिया दूसरे विकल्प टटोल रही थी।

आज छोटे माड्यूलर रिएक्टर कम पूंजी खाने वाले माने जाते हैं और ज्यादा सुरक्षित होने का दावा भी करते हैं मगर ये फायदे अभी नजर नहीं आए हैं आकार और स्तर में छोटे होने के कारण उनमें दुर्घटना होने पर भी असर छोटे इलाके तक ही रहना चाहिए और कम आबादी पर उसका असर होना चाहिए। मगर इसकी न तो गारंटी है और न ही यह बात साबित हुई है। हकीकत यह है कि छोटे माड्यूलर रिएक्टर जैसे- जैसे फैलेंगे और परमाणु ऊर्जा क्षमता जैसे-जैसे बढ़ेगी वैसे-वैसे ही दुर्घटनाओं की आशंका और दूसरे जोखिम भी बढ़ेंगे।

इससे भी अहम बात परमाणु कचरा है, जिससे निपटने का कोई संतोषजनक समाधान अभी तक नहीं मिला है। आगे जाकर यही सबसे बड़ी चुनौती हो सकता है। जब छोटे माड्यूलर रिएक्टर बढ़ेंगे तो परमाणु कचरे का अंबार भी लगेगा। चूंकि इससे निपटने का तरीका अभी दुनिया को नहीं मिला है, इसलिए एक-डेढ़ दशक में यह विकराल समस्या बन सकती है।

आखिर में यह जोखिम जो हमेशा बना रहेगा कि तैयार किया गया कुछ परमाणु ईंधन ऐसे कामों में लगा दिया जाए, जिनका शांति से कोई लेना-देना नहीं है। इसलिए कड़े सुरक्षा मानकों, निगरानी और नियमन की जरूरत है। छोटे माड्यूलर रिएक्टरों की तकनीक तथा डिजाइन तेजी से विकसित हो रहे हैं और कार्बन से पीछा छुड़ाना

चाह रही दुनिया के लिए यह कई मायनों में व्यावहारिक विकल्प हो सकता है। किंतु ये रिएक्टर रामबाड़ नहीं हैं और न ही परमाणु ऊर्जा को बड़ पैमाने पर अपनाने से पैदा होने वाले खतरों को कमतर मानना चाहिए।

देश के नीति निर्माताओं को सुनिश्चित करना होगा कि कड़े और सोच-समझकर बनाए गए नियम लागू किए जाएं तथा सुरक्षा उपायों पर भी पूरा ध्यान दिया जाए। इसके साथ ही मजबूत निगरानी व्यवस्था हो, जिसमें प्रशिक्षित कर्मचारी तैनात किए जाएं। इतना ही नहीं निगरानी और नियामकीय प्राधिकार को खतरा पता चलने पर फौरन हरकत में आने के लिए समुचित अधिकार भी दिए जाने चाहिए।

परमाणु ऊर्जा को अपनाने की प्रक्रिया तेज करने तथा इसमें निजी क्षेत्र की भागीदारी को बढ़ावा देने के सरकार के प्रयास सही दिशा में हैं। किंतु जरूरत इस बात की है कि प्रोत्साहन के साथ सुरक्षा पक्की करने के लिए नियामकीय उपाय भी लागू किए जाएं। अंत में सरकार को दुनिया भर में छोटे माड्यूलर रिएक्टरों के विकास पर नजर रखनी चाहिए और सुनिश्चित करना चाहिए कि इस क्षेत्र में और भी जानकारी तथा उन्नति होने पर भारत भी तेजी से कदम उठाए।

Date: 10-02-25

विकसित भविष्य के लिए जरूरी हैं प्लेटफॉर्म

लवीश भंडारी, (लेखकर सीएसईपी के अध्यक्ष हैं)

भारत को 2047 तक विकसित बनाने का लक्ष्य मुझे आकर्षित तो करता है मगर अपनी बिरादरी के दूसरे लोगों की तुलना में मुझे संदेह भी अधिक होता है। यह लक्ष्य बेहद करीब नजर आता है, जिसकी वजह से और भी लुभाता है। अगर हम बीते जमाने के मॉडल और सबक आजमाते हैं तो इस लक्ष्य से चूक जाना लगभग तय है। यह भी तय है कि बंटी हुई भू-राजनीति, बिना भरोसे के व्यापार साझेदार, तकनीकी चुनौतियां और जलवायु परिवर्तन जैसी अनिश्चितताएं बनी रहेंगी बल्कि और भी बढ़ेंगी। इसलिए हमारे पास न तो गति है और न ही भू-राजनीति, व्यापार या जलवायु हमारे पक्ष में है। किंतु मुझे लगता है कि लक्ष्य इतना आकर्षक तो हैं कि इसके लिए अधिक यत्न किया जाए।

मेरे विचार में तमाम अनिश्चितताओं का हल ऐसी आर्थिक व्यवस्था बनाने में है, जो बदलते माहौल में खुद को जल्द ढाले और जिसमें लगातार नवाचार ही उत्पादन की बुनियाद हो। इसके लिए अधिक से अधिक आर्थिक गतिविधियों को प्लेटफॉर्म के स्वरूप में अंजाम दिया जा रहा है। इसकी वजह शायद यह भी है कि चुनौतीपूर्ण अवसरों में यह ज्यादा कारगर है डिजिटल कॉमर्स से लेकर सैन्य उपकरण, वाहन उत्पादन और सूचना तकनीक समेत तमाम क्षेत्रों में प्लेटफॉर्म वाले मॉडल का इस्तेमाल हो रहा है। हालांकि हर नए विचार की तरह यह विचार भी पुराना है। प्लेटफॉर्म कुछ और नहीं हैं, वे तमाम तरह के एजेंटों को एक साथ काम करने का मौका भर देते हैं। रेलवे प्लेटफॉर्म पर मुसाफिर, रेहड़ी वाले और रेलवे कर्मचारी एक साथ आते हैं। कंप्यूटर प्लेटफॉर्म पर कई सॉफ्टवेयर एक साथ काम करते हैं। एयरक्राफ्ट प्लेटफॉर्म में कई तरह के पुर्जे लगाए और बदले जाते हैं। विश्वविद्यालयों और मॉल में भी ऐसे ही आदान-प्रदान होता है।

इन प्लेटफॉर्म की सबसे बड़ी खासियत होती है इनके एजेंटों की आजादी और लचीलापन । इसीलिए किसी एक एजेंट या घटक पर उनकी निर्भरता बहुत कम होती है। यही वजह है कि विक्रेता किसी एक ग्राहक से नहीं बंधे होते हैं और न ही ग्राहक किसी एक विक्रेता से बंधा रहता है। इस लचीली व्यवस्था के कई फायदे हैं। ई- कॉमर्स कंपनियां उत्पादों में ज्यादा अच्छी तरह से अंतर कर पाती है और ग्राहकों को अधिक विकल्प मिल जाते हैं। इस तरह वे तेजी से बदलती मांग को कम खर्च में ही पूरा कर देती हैं। सैन्य विमान की बात करें तो पुराने हथियारों और इंजनों की जगह ज्यादा उन्नत हथियार और इंजन आ सकते हैं, जिससे विमान का प्लेटफॉर्म लंबे समय तक चल जाता है। इसलिए प्लेटफॉर्म लचीला हो तो आजादी का बहुत फायदा मिलता है।

डिजिटल तकनीक में तेज प्रगति से भी सूचना तत्काल सही जगह पहुंच जाती है, जिससे लोगों की प्रतिक्रिया भी विश्वसनीय तरीके से आती है। इससे नवाचार भी तेज होता है।

भारत सरकार दुनिया की उन चुनिंदा सरकारों में शामिल है, जो प्लेटफॉर्म तैयार करने के प्रस्तावों का स्वागत करती है। यहां डिजिटल भुगतान व्यवस्था में प्लेटफॉर्म की सभी खासियत हैं, जिनकी वजह से यह जल्द शुरू हुई और कामयाब भी हो गई ओपन नेटवर्क फॉर डिजिटल कॉमर्स (ओनएनडीसी) के साथ सरकार एक और प्लेटफॉर्म तैयार कर रही है, जिससे कई और स्टार्टअप की जमीन तैयार होगी। इसलिए अब हमें ऐसी आर्थिक नीति नहीं चाहिए, जो व्यापार या उद्योग जैसे किसी खास क्षेत्र के खास प्लेटफॉर्म पर केंद्रित हो। उसकी जगह हमें सभी प्लेटफॉर्मों पर केंद्रित एक नीति चाहिए । प्लेटफॉर्म भी दूसरी कंपनियों या संस्थाओं की तरह होते हैं, जो एक दूसरे से होड़ भी करते हैं और मिल-जुलकर काम भी करते हैं। किसी दूसरी आर्थिक संस्था की तरह उन्हें भी फलने-फूलने के लिए आजादी चाहिए। सरकार डिजिटल भुगतान और ओएनडीसी के अनुभवों से खुद ही सीखे

तो बेहतर होगा। इसके जोखिमों से घबराने और नवाचार का गला घोटने के बजाय लेनदेन के इस नए तरीके को साकार होने देना चाहिए, जहां प्लेटफॉर्म मालिक सेवा प्रदाता भी होता है।

किंतु लगता है कि अनिश्चितता भरी दुनिया में प्लेटफॉर्मों को नवाचार तथा वृद्धि मैं मददगार मानने के बजाय उनसे डरा ज्यादा जा रहा है। उनसे अक्सर तो उत्पन्न हो रहे हैं मगर यह धारणा भी है कि वे छोटे कारोबार को नुकसान पहुंचाते हैं या बाजार में दबदबा कायम कर होड़ खत्म कर रहे हैं। इससे बचाने के लिए हमारे पास भारतीय प्रतिस्पर्द्धा आयोग है। लेकिन धारणा यह भी है कि इस तरह के लेनदेन और व्यापार से किराना दुकानों की जरूरत कम हो जाएगी इसलिए इन दुकानों को बचाना होगा। यह दलील सही नहीं है क्योंकि किराना दुकानें भी खुद को बदल रही हैं। आवधिक श्रम बल सर्वेक्षण के रोजगार संबंधी हालिया आंकड़े बताते हैं कि खुदरा व्यापार में रोजगार पर कोई नकारात्मक असर नहीं हुआ है। इसलिए अब हमें व्यापक प्लेटफॉर्म नीति बनानी चाहिए, जिसमें ये बातें शामिल हों

पहली, प्लेटफॉर्म सरकारी हो या निजी, उसे डिजिटल इंडिया और भारतनेट समेत व्यापक डिजिटल बुनियादी ढांचे में भागीदारी करनी चाहिए तथा उसका फायदा उठाना चाहिए। ओएनडीसी के रूप में सरकार देसी उत्पादकों तथा उपभोक्ताओं का वैकल्पिक प्लेटफॉर्म तैयार कर रही है। इससे विकल्प और नवाचार बढ़ जाएंगे और होड़ भी बढ़ेगी।

दूसरी बात, नियम-कायदे सरल बनाने होंगे। इस क्षेत्र में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) कम रखने की कोई तुक नहीं है क्योंकि प्लेटफॉर्मों में एफडीआई से भारत ही नहीं दुनिया भर में मौके तैयार होंगे। इस क्षेत्र को रोकने वाली नीतियों में सबसे ज्यादा खामी इसी नीति में है क्योंकि इसके बहुत नकारात्मक असर होते हैं। ये नीतियां बाजार से बाहर करा देती हैं, देसी तथा वैश्विक कंपनियों के बीच होड़ कम करती हैं एफडीआई तथा दूसरी तकनीकें नहीं आने देतीं और भारतीय कंपनियों को दुनिया भर के बाजारों में जाने से रोकती हैं।

तीसरी, नीति ऐसी हो, जिससे स्टार्टअप्स आसानी से प्लेटफॉर्म का इस्तेमाल कर सकें, उसकी प्रक्रियाओं से मार्केटिंग समेत विभिन्न प्रकार की मदद मिल सके ताकि इन प्लेटफॉर्मों से मिलने वाले मौकों का पूरा फायदा उठा सकें। इसके अलावा सख्त केवाईसी समेत जो जरूरतें रखी गई हैं, उनसे छोटे स्थानीय स्टार्टअप तथा अनौपचारिक क्षेत्र के स्टार्टअप उन मौकों का पूरा फायदा नहीं उठा पाते। क्या जरूरतें और शर्तें ज्यादा सख्त हैं? क्या हम छोटे उद्यमियों के लिए उनमें ढील सकते हैं?

चौथी बात, प्लेटफॉर्मों के साथ मिलकर इस क्षेत्र के लिए लोकपाल तथा ग्राहकों की शिकायत दूर करने के लिए

व्यवस्थित नीति बनाई जानी चाहिए । ग्राहकों का भरोसा जितना अधिक होगा, इस क्षेत्र की वृद्धि और प्रभाव उतना ही अधिक होगा। ऐसे में नियंत्रण और जुर्माने की जगह उसे ठीक करने की प्रक्रियाओं में निवेश होना चाहिए।

पांचवीं अंतरराष्ट्रीय लेनदेन मे रुकावटें पहचानी और हटाई जाएं। छठी, हमें भारतीय प्लेटफॉर्मों को वैश्विक मूल्य श्रृंखलाओं के साथ जोड़ना होगा क्योंकि देसी कंपनियों को दुनिया भर में अवसर मिलेंगे।

आखिर में अच्छी नीति वह होती है जो अर्थव्यवस्था में होने वाले स्वाभाविक बदलावों में मदद करे। लेनदेन या सौदों के पुराने तौर-तरीके भविष्य की जरूरतों के माफिक नहीं हैं। उनसे हमारी रफ्तार घटेगी और मौकों तथा कल्याण के रास्तों में रुकावट भी आएगी।

जनसत्ता

Date: 10-02-25

व्यापार युद्ध की नई आशंकाएं

सुरेश सेठ

वक्त बदलने के साथ नई सदी में नए सत्य सामने आ रहे हैं। एक समय था जब सेनाएं एक-दूसरे के सामने आकर रणभेरी बजाती और चक्रव्यूह रचा कर युद्ध लड़ती थीं। सुबह युद्ध शुरू होता और शाम को रोक दिया जाता। यह था युद्ध का नियम, लेकिन जैसे-जैसे समय गुजरता गया, युद्ध का रूप भी बदलता गया। अब युद्ध और युद्ध का समाधान राजनीति की प्राथमिकताओं के आधार पर होने लगा है। सेनाएं, सेनाओं को नहीं हराती, खजाने को भरने या खाली होने की बेबसी युद्ध पर लगाम लगाती है। पिछले तीन वर्ष से दुनिया कुछ देशों को युद्ध करते देख रही है। रूस और यूक्रेन का युद्ध, इजराइल और हमास का युद्ध, चीन और ताइवान में चल रही तनातनी सामने है। भारत और चीन की बात क्या करें। अब जो समझौता सामने आया है, उसके पीछे भी क्या दोनों देशों और विशेष रूप से चीन की व्यावसायिक मजबूरियों का दबाव नहीं है ?

अर्थ यह कि आजकल युद्ध इसलिए होते हैं, क्योंकि हथियार बनाने वाले देशों को अपने हथियार कारखाने चलाने

हैं। अब युद्धों की शुरुआत उन अधिनायक रूपी राज्य प्रमुखों द्वारा होती है, जो यह समझते हैं कि उनके अहं की बराबरी उनके आसपास के छोटे देश नहीं कर सकेंगे। फिर पर्दे के पीछे का खेल शुरू हो जाता है। एक छोटे से देश को दुनिया के चंद समृद्ध देश थपकी देकर एक बड़े देश के साथ भिड़ा देते हैं। रूस और यूक्रेन का उदाहरण सामने है। संवाद की बात होती है, समाधान की बात होती है, लेकिन हथियारों और गोला बारूद की आपूर्ति दोनों ओर से रुकती नहीं, विध्वंस का तांडव थमता ही नहीं यह तो हथियार बनाने वाले बड़े-बड़े देशों की मजबूरी है कि अगर युद्ध छिड़ गया है, तो उसे लंबा खिंचने दें।

वैश्विक परिदृश्य में एक नई हलचल दिख रही है। यह हलचल अमेरिका के राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने पैदा की है। वे व्यापार युद्ध का नया राग शुरू कर रहे हैं। उनका जोर है कि अमेरिका के लिए उसके हित सर्वोपरि हैं। इसके तहत अवैध रूप से आए प्रवासी नागरिकों को निष्कासित करने की मुहिम छेड़ने की जो धमकी दी जा रही है, वह अपने देश के कामगारों का दिल जीतने के लिए है कि ये नंबर दो के नागरिक सरहद पार होंगे, तो आपको आपकी मेहनत का सही मूल्य मिलेगा। मगर अपने देश के हित को साधने की बात कहने से जो लोकप्रियता मिलती है, उसे अमेरिकी राष्ट्रपति तो छोड़ने के लिए तैयार नहीं दुनिया के बहुत से देशों का व्यापार अमेरिका के साथ होता है। अमेरिका का डालर बहुत मजबूत मुद्रा है। मुद्रा तब मजबूत होती है, जब उस देश से निर्यात ही निर्यात का माहौल खुलता रहे और उसके आयात की जरूरतें इतनी अनिवार्य न हों। अमेरिका की यही स्थिति है। भारत से ही तुलना की जा सकती है। देखते ही देखते हमारी आयात आधारित व्यवस्था ने भारतीय रुपए का मूल्य अमेरिका के डालर के मुकाबले में 70 से 86 रुपए तक गिरते हुए देख लिया। अभी भी हालात में सुधार नहीं हो सका। रुपया लगातार गिर ही रहा है।

अमेरिका की नाराजगी कनाडा, मैक्सिको और चीन से भी है पिछले दिनों ब्रिक्स देशों ने उनके अतिरिक्त तीसरी दुनिया के देशों ने भी फैसला किया कि अंतरराष्ट्रीय विनिमय में डालर ही सर्वोपरि क्यों रहे? क्या कोई और वैकल्पिक मुद्रा तीसरी दुनिया या ब्रिक्स देश खड़ी नहीं कर सकते, जिसके द्वारा सही विनिमय दरों पर व्यापार हो सके। अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने सत्ता संभालने से पहले ही कह दिया था कि जो विनिमय के लिए डालर को त्यागेगा, वह व्यापारिक तौर पर मार खाएगा। इस व्यापार युद्ध को आर्थिक भाषा में 'टैरिफ वार' कहा जाता है। ट्रंप ने कहा कि अगर डालर की शर्तों पर व्यापार नहीं होगा, तो ऐसे देशों पर कड़े शुल्क लगाए जाएंगे। अब सिर्फ धमकी नहीं, 'कर युद्ध' भी छेड़ दिया गया है।

सबसे पहले ट्रंप ने मैक्सिको, कनाडा और चीन से आयातित वस्तुओं पर कर लगाने संबंधी एक आदेश पर बीते दिनों हस्ताक्षर कर दिए । चीन, मैक्सिको और कनाडा ही सबसे पहले वे देश हैं, जो अपनी ऊंची कर दरों से अमेरिकी व्यापार घाटे को बढ़ाते हैं। चीन से 30.2 फीसद, कनाडा से 14 फीसद और अमेरिका से 19 फीसद का

घाटा होता है। ट्रंप ने कहा था कि मैं ऐसे देशों पर शुल्क लगाने का वादा करता हूं।' इन देशों में भारत का नाम भी आता था, क्योंकि ट्रंप के अनुसार भारत ने भी अपने निर्यातों पर भारी कर लगा रखा है। हमारा व्यापार उसके साथ हुए कुल व्यापार का केवल 3.2 फीसद है, इसलिए जो व्यापार युद्ध अब छिड़ा है, इसमें फिलहाल भारत का नाम नहीं है मगर भारत जानता है कि यह युद्ध उस पर भारी पड़ेगा। अमेरिका से आयातित वस्तुएं भारत में एकदम महंगी हो जाएंगी।

ट्रंप ने कनाडा, मैक्सिको और चीन पर आरोप लगाया है कि वे दर्दनिवारक दवाएं और अन्य वस्तुओं का अवैध आयात करके उनकी अर्थव्यवस्था में उथल-पुथल पैदा करते हैं। उन्होंने चीन से आयात किए सभी सामानों पर दस फीसद, मैक्सिको और कनाडा से आयात हुए सभी सामानों पर 25-25 फीसद कर लगा कर आर्थिक आपातकाल की घोषणा कर दी है। इसका जवाब मैक्सिको और कनाडा ने भी दे दिया है। जस्टिन ट्रूडो ने गंभीर लहजे में कहा है कि हमें एकजुट करने की बजाय अलग कर दिया गया है। उनका देश शराब और फलों सहित 155 अरब डालर तक के अमेरिकी आयात पर 25 फीसद शुल्क लगाएगा। हम हमेशा अमेरिका के साथ खड़े रहे। अफगानिस्तान में उनके साथ लड़े। कैलिफोर्निया के जंगलों में आग से लेकर कैटरीना तूफान की आपदाओं तक हमने उनकी मदद की, लेकिन अब हम पर यह कर क्यों ?

उधर, मैक्सिको ने भी कहा कि यह आरोप लगा कर कि हम आपराधिक संगठनों के साथ सहयोग करते हैं, कर थोपना गलत है। हम अपने क्षेत्र में दखल देने की हर मंशा का विरोध करते हैं। मेक्सिको के राष्ट्रपति ने स्पष्ट कह दिया कि हम भी इस कर वृद्धि का जवाब देंगे। बात यहीं तक सीमित नहीं है। यह तो व्यापार युद्ध की शुरुआत है। अगर इसमें अमेरिका को अपेक्षित सफलता मिल जाती है, तो इसके बाद वह तीसरी दुनिया के देशों को भी नहीं बख्शेगा। भारत पर उसकी नजर पहले से ही है मगर याद रखना चाहिए कि इस तरह की व्यापारिक दादागीरी का जवाब देशों के आत्मनिर्भर हो जाने में ही है। तीसरी दुनिया के देश आपस | मुक्त व्यापार कर सकते हैं। इसकी शुरुआत हो चुकी है। इसमें हर देश अपनी मुद्रा में ही व्यापार करता है। अंततः डालर के एकाधिकार को तोड़ने के लिए एक और सशक्त मुद्रा को अंतरराष्ट्रीय विनिमय में उभरना होगा। फिलहाल अपनी-अपनी शर्तों पर अमेरिका से इतर नई उभरती व्यापारिक शक्तियों और तीसरी दुनिया के जागते हुए देशों के साथ भारत जो व्यापार बढ़ाने की नीति बना रहा है या समझौता कर रहा है, वह सही है। उम्मीद है कि वह कुछ देशों की दादागीरी के दबाव में नहीं आएगा।

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 10-02-25

हताशा को हर हाल में हराने का हौसला

हरिवंश चतुर्वेदी

बीते दिनों आईआईटी रुड़की की बीटेक दूसरे वर्ष की छात्रा ने खुदकुशी कर ली। इस संस्थान में पिछले एक साल में आत्महत्या का यह तीसरा मामला था। आईआईटी संस्थानों में देश के प्रखर छात्र - छात्राओं को ही दाखिला मिलता है। ऐसे में, वहां हर साल आत्महत्या के कई मामलों का सामने आना चिंता की बात है। वास्तव में, आईआईटी ही नहीं, देश के हरेक कोने में विद्यार्थियों में खुदकुशी की बढ़ती प्रवृत्ति चिंताजनक है। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) के आंकड़ों के अनुसार, पिछले दो दशकों में विद्यार्थियों में जान देने के मामले चार प्रतिशत की दर से बढ़े हैं, जबकि कुल आत्महत्या में दो फीसदी की दर से वृद्धि हुई है। पिछले एक दशक (2014-24) में तो यह पाया गया है कि छात्रों में आत्महत्या की दर नौजवानों की जनसंख्या वृद्धि दर से ज्यादा रही है। 2014-15 में विद्यार्थियों की आत्महत्या के 6,654 मामले दर्ज किए गए थे, जो 2023-24 में बढ़कर 13,044 हो गए।

एनसीआरबी के आंकड़ों पर आधारित आईसी 3 इंस्टीट्यूट द्वारा तैयार की गई एक रिपोर्ट (2024) के अनुसार, महाराष्ट्र, तमिलनाडु और मध्य प्रदेश ऐसे राज्य हैं, जो विद्यार्थियों की खुदकुशी के मामले में सबसे ऊपर हैं। यह सही है कि देश के तमाम शहरों में छात्र आत्महत्या करते हैं, लेकिन कुछ ऐसे शहर भी हैं, जहां यह समस्या गंभीर रूप ले चुकी है। इनमें राजस्थान का कोटा शहर सबसे ज्यादा बदनाम है साल 2023 में यहां 26 किशोरवय छात्रों ने आत्महत्या की थी। साल 2024 में इस संख्या में जरूर गिरावट आई और 17 ऐसे मामले दर्ज किए गए, लेकिन बीते एक महीने में यहां छह छात्र अपना जीवन खत्म कर चुके हैं।

कोटा छात्रों की आत्महत्या का गढ़ क्यों बन गया है। और राज्य सरकार इसे क्यों नहीं रोक पा रही, इस पर कई बार अध्ययन हो चुके हैं। दरअसल, पिछली सदी के 60 के दशक में कोटा उत्तर भारत का एक प्रमुख औद्योगिक शहर बन गया था, जहां कई औद्योगिक घरानों ने बड़ी-बड़ी फैक्टरियां स्थापित की थीं। सन् 1991 के उदारीकरण से पहले अधिकांश उद्योग-धंधे बंद हो गए और वहां एक नए उद्योग का जन्म हुआ, जिसे 'कोचिंग इंडस्ट्री' कहते हैं।

कोटा देश का वह शहर है, जहां जेईई और नीट की तैयारी कराने वाली कई बड़ी-बड़ी कंपनियां संचालित होती हैं। यह कोचिंग का फैक्टरी मॉडल है। इन कोचिंग कंपनियों के पास बड़े-बड़े ऑडिटोरियम हैं, जहां छात्र- छात्राओं को कुछ नामचीन अध्यापक पढ़ाते हैं। अपनी संतान को डॉक्टर और इंजीनियर बनाने के लिए देश भर के मध्यवर्गीय अभिभावक 14 से 18 साल के बच्चों को इन कोचिंग संस्थानों में लाखों रुपये की फीस देकर दाखिला दिलाते हैं। ये कोचिंग संस्थान इन किशोरों को दिन में 12 से 16 घंटे पढ़ने के लिए मजबूर करते हैं, जिसका दबाव बहुत से छात्र नहीं झेल पाते। इनमें से अधिकांश निजी छात्रावासों में रहते हैं और मानसिक रोगों के शिकार बन जाते हैं। यहां के कोचिंग उद्योग के सफेद व स्याह पहलुओं को नेटफ्लिक्स की एक सीरीज ने बहुत अच्छे ढंग से उजागर किया था।

14 से 22 वर्ष की आयु वाली पीढ़ी हमारे देश का भविष्य है। भारत का 2047 तक विकसित राष्ट्र बनने का सपना कुछ हद तक इस बात पर भी निर्भर करेगा कि हम देश के इन 25 करोड़ नौजवानों को मानसिक रोगों, खासतौर से 'डिप्रेशन' से किस हद तक बचा पाते हैं? यह हमारे समाज का दुर्भाग्य है कि मानसिक रोगियों को हिकारत की नजर से देखा जाता है। बच्चों को निराशा और हताशा से बचाने की जिम्मेदारी सरकारों के साथ-साथ उन अभिभावकों की भी है, जो अपने अधूरे सपनों को बच्चों के ऊपर लादकर तमाम तरह की हसरतें पाल बैठते हैं। सवाल है कि शिक्षित युवा और विद्यार्थी अपने जीवन का खुद गला क्यों घोंटते हैं? क्या वे खुदकशी से पहले अपनी बेचैनी के संकेत अपने परिजनों, संगी- साथियों या शिक्षकों को नहीं देते? अगर ऐसे संकेत मिलते हैं, तो उन्हें समय पर मनोचिकित्सा देकर क्यों नहीं बचा लिया जाता ?

हर साल जब जेईई और नीट के रिजल्ट घोषित किए जाते हैं या दसवीं-बारहवीं के परिणाम आते हैं, तो मीडिया में असफल विद्यार्थियों द्वारा आत्महत्या की खबरें भी आने लगती हैं। तमिलनाडु जैसे कई राज्यों में यह एक गंभीर समस्या बन चुकी है। परीक्षा में फेल होने बाद की जाने वाली आत्महत्या हमारी सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था में निहित भयंकर बीमारी का संकेत देती है। एक तरफ आर्थिक विकास के बावजूद रोजगार के अवसर कम होते जा रहे हैं, तो दूसरी तरफ, हमारा समाज हर कामयाब इंसान को हीरो की तरह पूजता है। क्या जिंदगी में हर इंसान हरेक बार सफल हो सकता है? क्या जिंदगी में सफलता- विफलता साथ-साथ नहीं चलती ?

छात्र-छात्राओं की खुदकुशी से यह सवाल भी उठता है कि क्या राष्ट्रीय स्तर पर ऐसी घटनाओं को रोकने के लिए कोई संगठित और व्यापक प्रयास नहीं किए जा सकते ? क्या हमारी शिक्षा व्यवस्था छात्रों को आत्महंता बनने से नहीं रोक सकती? क्या ऑक्टोपस की तरह छात्रों के भविष्य को जकड़ती कोचिंग इंडस्ट्री पर प्रभावी नियंत्रण

नहीं लगाए जा सकते ? क्या जेईई और नीट जैसी राष्ट्रीय परीक्षाएं सिर्फ शीर्षस्थ पांच प्रतिशत प्रतिभाओं के लिए बनाई गई हैं और शेष 95 फीसदी छात्रों को कोई अन्य अच्छे अवसर नहीं दिए जा सकते ?

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 ने विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य और खुशहाली को उनके समग्र विकास का मूल आधार मानते हुए कई रचनात्मक सुझाव दिए थे। इनमें हर स्कूल, कॉलेज और यूनिवर्सिटी में काउंसलर व मनोचिकित्सक नियुक्त करने, पढ़ाई के बोझ व उससे पैदा होने वाले तनाव को कम करने, रटने-रटाने की प्रवृत्ति को रोकने, जिंदगी जीने की कला सिखाने, मानसिक स्वास्थ्य को लेकर जागरूकता फैलाने, कैंपस को समावेशी व सुरक्षित बनाने और परिवार व शिक्षकों को प्रशिक्षित करने के सुझाव दिए गए थे। इन पर कितना अमल हो पाया है, इस पर श्वेत पत्र जारी होना चाहिए।

हकीकत यह है कि देश में हर पांच में से दो इंसान मानसिक रोगों से पीड़ित है और एक लाख की आबादी पर हमें कम से कम तीन मनोचिकित्सक की जरूरत है, लेकिन यह संख्या बमुश्किल एक भी नहीं पहुंच रही। क्या स्वास्थ्य मंत्रालय मनोचिकित्सकों, मनोवैज्ञानिकों और काउंसलरों की संख्या बढ़ाने के लिए कोई योजना नहीं बना सकती ? शिक्षित युवाओं में फैल रही हताशा को रोकने में ऐसे उपाय कारगर हो सकते हैं।